उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ।
असाधुजनसंपर्के यः पलायति जीवति ॥ १९॥

दोहा—काल उपद्रव संग शठ, अन्य राज भय होय ।
तेहि थलते जो भागि है, जीवत बचि है सोय ॥ १९ ॥

उपद्रव उठनेपर, शत्रुके आक्रमण करनेपर, भयानक अकाल पडनेपर और खलजनके संग होनेपर जो भागता है वह जीवित रहता है ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
जन्मतो हि फलं लोके मरणं तस्य केवलम् ॥२०॥

दोहा—धर्म अर्थ कामादिमें, अहै न एकौ जाहि ।
जन्म भयेको फल मिल्यो, केवल मरणहि ताहि ॥२०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे जि...
उसको मनुष्योंमें जन्म होनेका फल केव... शतैर्वरः ।२ ॥

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धा... ताराः सहस्रशः ।
दाम्पत्ये कलहो नास्ति ..., एक पुत्र सुविचारचार...
तारा नहीं हजार ॥

दोहा—जहां अन्न संचित ...गुणरहित... श्रेष्ठ है, जैसे एक
दंपतिमें जहँ कलह ना... ॥२१॥
तत्र श्रीः स्वयमागता

जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते, अन्न संचित ... है और ...में
कलह नहीं होता वहां आप ही लक्ष्मी विरा... ॥२१॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

मूर्ख जन्मा चिरंजीवी हो तो भी उससे जो उत्पन्न होते ही मर-गया हो वह श्रेष्ठ है । क्योंकि मरा थोडे ही दुःखका कारण होता है पर जड जबलों जीता है तबलों दाहता है ॥ ७ ॥

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाऽग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥ ८ ॥

दोहा—घर कुगांव सुत मूढ तिय, खल नीचनि सेवकाय ।
कुभख सुता विधवा छवो, तनु बिनु आगि जराय ॥८॥

कुग्राममें वास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री, मूर्ख ... कन्या ये छः विना आग ही शरीरको जलाते हैं ॥ ८ ॥

... क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गुर्विणी ।
...ः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥९॥

...का होय तेहि धेनु जो, दूध न गाभिन होय ।
कौन अर्थ वहि सुत भये, पण्डित भक्त न जोय ॥९॥

उस गायसे क्या लाभ है ? जो न दूध देवे, न गाभिन होवे और ऐसे पुत्र हुएसे क्या लाभ ? जो न विद्वान् भया न भक्तिमान् ॥९॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः ।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च ॥१०॥

सोरठा—यह तीनै विश्राम, माहिं तपन जगतापमें ।
हरै घोर भव घाम, पुत्र नारि सतसंग पुनि ॥ १० ॥

संसारके तापसे जलते हुए पुरुषोंके विश्रामके हेतु तीन हैं—लड़के, स्त्री और सज्जनोंकी संगति ॥ १० ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ११

दोहा—भूपति औ पंडित वचन, औ कन्याको दान।
एकै एकै वार ये, तीनों होत समान ॥ ११ ॥

राजा लोग एक वार आज्ञा देते हैं, पण्डितलोग एक ही वार बोलते हैं, कन्याका दान एक ही वार होता है, ये तीनों बातें एक ही वार होती हैं ॥ ११ ॥

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभी रणम्॥ १२ ॥

दोहा—तप एकहि दुइसे पठन, गान तीनि पथ चारि।
कृषी पांच रण वहुत मिलि, अस कह शास्त्र विचारि १२

अकेलेसे तप, दोसे पढना, तीनसे गाना, चारसे पन्थमें चलना, पांचसे खेती और वहुतोंसे युद्ध भलीभांतिसे वनते हैं ॥ १२ ॥

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी १३

दोहा—सत्य मधुर भाषै वचन, और चतुर शुचि होय।
पति प्यारी औ पतिव्रता, तिया जानिये सोय ॥ १३ ॥

वही भार्या है जो पवित्र और चतुर है, वही भार्या है जो पति-

पञ्चमोऽध्यायः ५.

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥१॥

दोहा–अभ्यागत सबको गुरु, नारी गुरु पति जान ।
द्विजन अग्नि गुरु चारिहू, वरन विप्र गुरु मान ॥१॥

स्त्रियोंका गुरु पतिही है, अभ्यागत सबका गुरु है, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनका गुरु अग्नि है और चारो वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है ॥ १ ॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ २ ॥

दोहा–जिमि तपाय घसि काटि पिटि,सुवरन लख विधि चारि।
त्याग शील गुण कर्म तिमि,चारिहि पुरुष विचारि॥२॥

घिसना, काटना, तपाना, पीटना इन चार प्रकारोंसे जैसे सोनेकी परीक्षा की जाती है वैसे ही दान, शील, गुण और आचार इन चार प्रकारोंसे पुरुषकी भी परीक्षा की जाती है ॥ २ ॥

तावद्भयेषु भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कया ॥ ३ ॥

दोहा–जौलौं भय आवै नहीं, तौलौं डरे विचार ।
आये शंका छोडकै, चाहिये कीन्ह प्रहार ॥ ३ ॥

तबतक ही भयोंसे डरना चाहिये, जबतक नहीं आवे और आये हुए भयको देखकर प्रहार करना उचित है ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
न भवन्ति समाः शीलैर्यथा बदरिकण्टकाः ॥ ४ ॥

दोहा—एकहि गर्भ नक्षत्रमें, जायमान यदि होय ।
नहीं शील सम होत है, बेर कांट सम दोय ॥ ४ ॥

एक ही गर्भसे उत्पन्न और एक ही नक्षत्रमें जायमान शीलमें समान नहीं होते जैसे बेर और उसके कांटे ॥ ४ ॥

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः ।
नाविदग्धः प्रियं ब्रूयात्स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥ ५ ॥

दोहा—नहिं निरुपृह अधिकार गह, नहिं भूषण निहकाम ।
नहिं अचतुर प्रिय बोल नहिं, वंचक साफ कलाम ॥ ५ ॥

जिसको किसी विषयकी वांछा न होगी वह किसी विषयका अधिकारी नहीं लेगा, जो कामी न होगा वह शरीरकी शोभा करनेवाली वस्तुओंमें प्रीति नहीं रक्खेगा, जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकेगा और स्पष्ट कहनेवाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अनाथानां महाधनाः ।
दुर्भगाणां च सुभगाः कुलटानां कुलाङ्गनाः ॥ ६ ॥

दोहा—मूरख द्वेषी पंडितहि, धनहीनहि धनवान ।
परकीया स्वकीयाहुकी, विधवा सुभगा जान ॥ ६ ॥

मूर्ख पंडितोंसे, दरिद्री धनियोंसे, व्यभिचारिणी कुलस्त्रियोंसे और विधवा सुहागिनियोंसे द्वेष करती हैं ॥ ६ ॥

आलस्योपहता विद्या परहस्तगतं धनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

दोहा—आलसते विद्या नशै, धन औरनके हाथ ।
अल्पबीजसे खेत अरु, दल दलपति विनु साथ ॥७॥

आलस्यसे विद्या, दूसरेके हाथमें जानेसे धन, बीजकी न्यूनतासे खेत और सेनापतिके विना सेना नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥ ८ ॥

दोहा—कुल शीलहिते धारिये, विद्या करि अभ्यास ।
गुणते जानहि श्रेष्ठ कहँ, नयनहिं कोपनिवास ॥ ८ ॥

अभ्याससे विद्या, सुशीलतासे कुल, गुणसे भला मनुष्य और नेत्रसे कोप ज्ञात होता है ॥ ८ ॥

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥९॥

दोहा—विद्या रक्षित योगते, मृदुतासे भूपाल ।
रक्षित गेह सुतीयते, धनते धरम विशाल ॥ ९ ॥

धनसे धर्मकी, यम नियम आदि योगसे ज्ञानकी, मृदुतासे राजाकी भली स्त्रीसे घरकी रक्षा होती है ॥ ९ ॥

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा ।
अन्यथा यद्वदञ्छान्तं लोकाःक्लिश्यन्ति चान्यथा॥

दोहा—वेद शास्त्र आचार औ, शान्तहि और प्रकार ।
जो कहते लहते वृथा, लोग कलेश अपार ॥ १० ॥

वेदके पांडित्यको व्यर्थ प्रकाश करनेवाला, शास्त्र और उस आचारके विषयमें व्यर्थ विवाद करनेवाला, शांत पुरुषको अन्यथा कहनेवाला ये लोग व्यर्थही क्लेश उठाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥११॥

सोरठा—दारिद नाशौ दान, शील दुर्गतिहि नाशियत ।
बुद्धि नाश अज्ञान, भय नाशत है भावना ॥ ११ ॥

दान दरिद्रताका, सुशीलता दुर्गतिका, बुद्धि अज्ञानका और भक्ति भयका नाश करती है ॥ ११ ॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् १२

सोरठा—व्याधि न कामसों आन, रिपु नहिं दूजो मोहसम ।
अग्नि न कोप समान, नहीं ज्ञानसे सुख पर ॥ १२॥

कामके समान दूसरी व्याधि नहीं है, अज्ञानके समान दूसरा वैरी नहीं है, क्रोधके तुल्य दूसरी आग नहीं है, ज्ञानके तुल्य अन्य सुख नहीं है॥

जन्ममृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम् ।
नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम् ॥ १३ ॥

सोरठा—जन्म मृत्यु लहु एक, भोगते इक शुभ अशुभ ।
नरक जात है एक, लहत एकही मुक्तिपद ॥ १३ ॥

यह निश्चय है कि, एकही पुरुष जन्म मरण पाता है, सुख दुःख एकही भोगता है, एकही नरकोंमें पड़ता है और एकही मोक्ष पाता है, अर्थात् इन कामोंमें कोई किसीकी सहायता नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताशस्य तृणं नारी निस्पृहस्य तृणं जगत् १४

दोहा—ब्रह्मज्ञानिहि स्वर्ग तृण, जित इन्द्रिय तृण नार ।
शूरहि तृण है जीवनो, निस्पृह कहँ संसार ॥ १४ ॥

ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण है, शूरको जीवन तृण है, जिसने इन्द्रियोंको वश किया उसे स्त्री तृणके तुल्य जानपड़ती है, निःस्पृहको जगत् तृण है ॥ १४ ॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥१५॥

दोहा—विद्या मित्र विदेशमें, घर तिय मीत सप्रीत ।
रोगिहि औषध अरु मरे, धर्म होत है मीत ॥ १५ ॥

विदेशमें विद्या मित्र होती है, गृहमें भार्या मित्र होती है, रोगीका मित्र औषध है और मरेका मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवाऽपि च १६

दोहा—व्यर्थै वृष्टि समुद्रमें, तृप्तहि भोजन दान ।
धनिकहि देनो व्यर्थ है, व्यर्थ दीप दिन मान ॥१६॥

समुद्रमें वर्षा वृथा है और भोजनसे तृप्तको भोजन निरर्थक है, धनीको धन देना व्यर्थ है और दिनमें दीपक व्यर्थ है ॥ १६ ॥

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम् ।
नास्ति चक्षुःसमं तेजो नास्ति चान्नसमं प्रियम् १७

दोहा—दूजो जल नहिं मेघसम, बल आतमहि समान ।
नहिं प्रकाश है नैनसम, प्रिय अनाज सम आन ॥१७॥

मेघके जलके समान दूसरा जल नहीं होता, अपने बल समान दूसरेका बल नहीं, इस कारण कि, समयपर काम आता है । नेत्रके तुल्य दूसरा प्रकाश करनेवाला नहीं है और अन्नके सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥ to make desire

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः १८

दोहा—अधनी धनको चाहते, पशू होन वाचाल ।
नर चाहत हैं स्वर्गको, सुरगण मुक्ति विशाल ॥१८॥

धनहीन धन चाहते हैं और पशु वचन, मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं और देवता मुक्तिकी इच्छा रखते हैं ॥ १८ ॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥१९॥

दोहा—सत्यहिते रवि तपत है, सत्यहि सब भुवभार ।
बहै पवनहू सत्यसे, सत्यहि सब आधार ॥ १९ ॥

सत्यसे पृथ्वी स्थिर है और सत्यसेही सूर्य तपते हैं, सत्यहीसे वायु बहती, सब सत्यहीसे स्थिर है ॥ १९ ॥

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमंदिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥२०॥

दोहा—चल लक्ष्मी औ प्राणहू, और जीविका धाम ।
यह चलाचल जगतमें, अचल धर्म अभिराम ॥२०॥

लक्ष्मी नित्य नहीं है, प्राण, जीवन, धाम ये सब स्थिर नहीं हैं, निश्चय है कि,इस चराचर संसारमें केवल धर्मही निश्चल है ॥२०॥

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः ।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी२१

दोहा—नरमें नाई धूर्त है, वायस पाक्षिन माहिं ।
चौपायनमें स्यार है, मालिनि नारि लखाहिं ॥२१॥

पुरुषोंमें नापित और पक्षियोंमें कौवा वञ्चक होता है, पशुओंमें सियार वंचक होता है और स्त्रियोंमें मालिनी धूर्त होती है ॥२१॥

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥२२॥

दोहा—पितु आचारज अन्नप्रद, भयरक्षक जो कोय ।
विद्यादाता पांच यह, मनुज पिता सम होय ॥२२॥

जन्मानेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो विद्या देता है, अन्न देनेवाला, भयसे बचानेवाला ये पांच पिता गिने जाते हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः २३

दोहा-राजतिया औ गुरुतिया, मित्रतियाहू जान ।
निजमाता औ सासु ये, पांचों मातु समान ॥ २३ ॥

राजाकी भार्या, गुरुकी स्त्री, ऐसेही मित्रकी पत्नी, सासु और अपनी जननी इन पांचोंको माता कहते हैं ॥ २३ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥१॥

दोहा-सुनिकै जानै धर्मको, सुनि दुर्बुधि तजि देत ।
सुनिकै पावै ज्ञानहू, सुने मोक्षपद लेत ॥ १ ॥

मनुष्य शास्त्रको सुनकर धर्मको जानता है,दुर्बुद्धिको छोडता है, ज्ञान पाता है तथा मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

काकः पक्षिषु चाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
पापो मुनीनां चाण्डालः सर्वेषां चैव निन्दकः॥२॥

दोहा-वायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहै चण्डाल ।
मुनियनमें जेहि पाप उर, सबमें निन्दक काल ॥२॥

पक्षियोंमें कौआ और पशुओंमें कुक्कुर चांडाल होता है,मुनियोंमें चांडाल पाप है और सबमें चांडाल निंदक है ॥ २ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥ ३ ॥

दोहा—कांस होत शुचि भस्मसे, ताम्र खटाई होइ ।
रजोधर्मते नारि शुचि, नदी बगस धोइ ॥ ३ ॥

कांसेका पात्र राखसे, तांबेका अम्ल(खटाई) से, स्त्री रजस्वला होनेपर और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन् सम्पूज्यते द्विजः ।
भ्रमन्सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥४॥

दोहा—पूजि जात है भ्रमनसे, द्विज योगी औ भूप ।
भ्रमन किये नारी नशै, ऐसी नीति अनूप ॥ ४ ॥

भ्रमण करनेवाला राजा,ब्राह्मण,योगी पूजित होते हैं परन्तु स्त्री घूमनेसे नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥५॥

दोहा—मित्र और हैं बन्धु तेहि, सोइ पुरुष गनिजात ।
धन है जाके पासमें, पण्डित सोइ कहात ॥ ५ ॥

जिसके धन है उसीके मित्र और उसीके बांधव होते हैं और वही पुरुष गिना जाता है, वही पण्डित कहलाता है ॥ ५ ॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ ६ ॥

दोहा—तैसीही मति होत है, तैसोई व्यवसाय ।
होनहार जैसो रहै, तैसोइ मिलत सहाय ॥ ६ ॥

वसीही बुद्धि और वैसाही उपाय होता है और वसही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार है ॥ ६ ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥७॥

दोहा—काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार ।
सबके सोयउ जागियतु, काल टरै नहिं टार ॥७॥

काल सब प्राणियोंको पचाता है और कालही सब प्रजाका नाश करताहै, सब पदार्थोंके लय होजानेपर काल जागता रहता है,कालको कोई नहीं टाल सकता ॥ ७ ॥

न पश्यन्ति च जन्मान्धाः कामान्धो नैव पश्यति।
मदोन्मत्ता न पश्यन्ति अर्थी दोषं न पश्यति ॥८॥

दोहा—जन्म अन्ध देखै नहीं, काम अन्ध तस जान ।
तैसेही मद अन्ध है, अर्थी दोष न मान ॥ ८ ॥

जन्मके अन्धे नहीं देखते, कामसे जो अन्धा होरहा है उसको सूझता नहीं, मदोन्मत्त किसीको देखते नहीं और अर्थी दोषको नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

दोहा—जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहू आप ।
आप भ्रमत संसारमें, मुक्ति लहत है आप ॥ ९ ॥

जीव आपही कर्म करता है और उसका फल भी आपही भोगता है,आपही संसारमें भ्रमता है और आपही उससे मुक्त भी होता है॥९॥

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥१०॥

दोहा—प्रजापाप नृप भोगियत, प्रोहित नृपको पाप ।
तियपातक पति शिष्यको, गुरु भोगत है आप ॥१०॥

अपने राज्यमें किये हुए पापको राजा और राजाके पापको पुरोहित भोगता है, स्त्रीकृत पापको स्वामी भोगता है, वैसेही शिष्यके पापको गुरु ॥ १० ॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

दोहा—ऋणकर्ता पितु शत्रु पर,-पुरुष गामिनी मात ।
रूपवती तिय शत्रु है, शत्रु अपंडित जात ॥ ११ ॥

ऋण करनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता और सुन्दरी स्त्री शत्रु है और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पण्डितम् ॥ १२ ॥

दोहा—धनसे लोभी वश करै, गर्विहि जोरि स्वपानि ।
मूरखके अनुसरि चले, बुधजन सत्य कहानि ॥१२॥

लोभीको धनसे, अहंकारीको हाथ जोडनेसे, मूर्खको उसके अनुसार वर्तनेसे और पंडितको सच्चाईसे वश करना चाहिये ॥ १२ ॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्य
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दारा न कुदारदाराः ॥ १३ ॥

दोहा—नहिं कुराज विनु राज भल, त्यों कुमीत हूं मीत।
शिष्य विना वरु है भलो, त्यों कुदार कहु मीत॥१३॥

राज्य न रहना यह अच्छा, परन्तु कुराजाका राज्य होना यह अच्छा नहीं। मित्रका न होना यह अच्छा, परन्तु कुमित्रको मित्र करना अच्छा नहीं। शिष्य न हो यह अच्छा, परन्तु निंदित शिष्य कहलावे यह अच्छा नहीं। भार्या न रहे यह अच्छा, पर कुभार्याका भार्या होना अच्छा नहीं॥ १३॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं
कुमित्रमित्रेण कुतोऽभिनिर्वृतिः।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः॥ १४॥

दोहा—कहँ कुराजते प्रजहि सुख, लहि कुमीत सुख केह।
कहँ कुशिष्यते यश मिले, नहिं कुनारि रति गेह॥१४॥

दुष्ट राजाके राज्यसे प्रजाको सुख और कुमित्र मित्रसे आनन्दी कैसे होसकता है? दुष्ट स्त्रीसे गृहमें प्रीति और कुशिष्यके पढानेवालेकी कीर्ति कैसे होगी?॥ १४॥

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
वायसात्पञ्च शिक्षेच्च षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात्॥१५॥

दोहा—एक एक बक सिंहसे, चारि कुकुट गुण लीन।
पांच काकते श्वानते, षट गर्दभसे तीन॥ १५॥

सिंह और वकसे एक एक व कुक्कुट (मुर्गा) से चार, कौवेसे पांच, कुत्तेसे छः और गदहेसे तीन गुण सीखने उचित हैं॥ १५॥

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति ।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

दोहा–जो कारज करणीय है, बहुत होय या नेक ।
सबै यतनसे कीजिये, यही सिंहगुण एक ॥ १६ ॥

कार्य छोटा हो वा बडा जो करणीय हो उसको सब प्रकारके प्रयत्नसे करना उचित है,इस एक गुणको सिंहसे सीखना कहते हैं॥१६॥

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत्पण्डितो नरः ।
देशकालं बलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्॥१७॥

दोहा–करि संयम इंद्रियनको, पंडित बगुल समान ।
देश काल बल जानिकै, कारज करै सुजान ॥ १७ ॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि, इन्द्रियोंका संयम करके देश काल बलको समझकर बगुलेके समान सब कार्यको साधै ॥ १७ ॥

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च बन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्य भोगं च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् १८॥

दोहा–युद्ध भोग आक्रमण करि, उचित समयपर जाग ।
यही चारि गुण कुक्कुटके, देन बंधुजन भाग ॥१८॥

उचित समयमें जागना, रणमें उद्यत रहना और बन्धुओंको उनका भाग देना और आप आक्रमण करके भोग करना इन चार बातोंको कुक्कुट (मुर्गा) से सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

गूढं च मैथुनं धार्ष्ट्यं काले चालयसंग्रहम् ।
अप्रमादमविश्वासं पञ्च शिक्षेच्च वायसात् ॥१९॥

दोहा–मैथुन गुप्त रु धृष्टता, अवसर संग्रह गेह ।
अप्रमाद विश्वास तजि, पञ्च काकहुधि लेह ॥ १९ ॥

छिपकर मैथुन करना, धैर्य धरना, समयमें घरसंग्रह करना, सावधान रहना और किसीपर विश्वास न करना इन पांचोंको कौवेसे सीखना उचित है ॥ १९ ॥

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः ।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः ॥२०॥

दोहा–बहु अहार थोरेहि तृपित, सुख सोवत झट जाग ।
छः गुण श्वानके शूरता, अरु स्वामी अनुराग ॥२०॥

बहुत खानेकी शक्ति रहते भी थोडेहीसे सन्तुष्ट होना, गाढ निद्रा रहते भी झटपट जागना, स्वामीकी भक्ति और शूरता इन छः गुणोंको कुत्तेसे सीखना चाहिये ॥ २० ॥

सुश्रान्तोऽपि वहेद्भारं शीतोष्णे न च पश्यति ।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥२१॥

दोहा–थक्यो भार ढोयो करै, शीत घाम समझै न ।
गर्दभके गुण तीनि ये, फिरै सदाही चैन ॥ २१ ॥

अत्यन्त थक जानेपर भी बोझको ढोते जाना, शीत और उष्णपर दृष्टि न देना, सदा संतुष्ट होकर विचरना इन तीन बातोंको गदहेसे सीखना चाहिये ॥ २१ ॥

य एतान्विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति॥२२॥

जम्बुकालयगते च लभ्यते
वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

दोहा–सिंहभवन यदि जाय कोउ, गज मुक्ता तहँ पाव ।
वत्सपूँछ खरचर्म टुक, स्यार मांद जो जाव ॥१८॥

यदि कोई सिंहकी गुहामें जा पड़े तो उसको हाथीके कपोलके मोती मिलते हैं और सियारके माँदमें जानेपर बछड़ेकी पूंछ और गदहेके चमडेका टुकड़ा मिलता है ॥ १८ ॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ॥ १९ ॥

दोहा–श्वान पूँछसम जीवनो, विद्या विनु है व्यर्थ ।
दंशनिवारण तन ढकन, नहिं एको सामर्थ ॥ १९ ॥

कुत्तेके पूँछके समान विद्याविना जीना व्यर्थ है, कुत्तेकी पूंछ गोप्येन्द्रियको ढांप नहीं सकती है,न मच्छर आदि जीवोंको उडा सकती है॥

वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया शौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥२०॥

दोहा–वचन शुद्ध मन शुद्ध औ, इंद्रिय संयम शुद्ध ।
भूतदया औ स्वच्छता, पर आर्थिन यह शुद्ध ॥२०॥

वचनकी शुद्धि, मनकी शुद्धि, इन्द्रियोंके संयम, सब जीवोंपर दया और पवित्रता ये परार्थियोंकी शुद्धि है ॥ २० ॥

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम् ।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥२१॥

दोहा–बास सुमनमहँ तेल तिल, अग्नि काठ पय घीव ।
ऊखहि गुड तिमि देहमें, आतम लखु मथि सीव ॥२१॥

जैसे फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग, दूधमें घी, ऊखमें गुड वैसेही देहमें आत्माको विचारसे देखो ॥ २१ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१॥

दोहा–अधम धनहिको चहत हैं, मध्यम धन औ मान ।
मानै धन है बडनको, उत्तम चाहैं मान ॥ १ ॥

अधम धनही चाहते हैं, मध्यम धन और मान, उत्तम मानही चाहते हैं, इस कारण कि महात्माओंका धन मानही है ॥ १ ॥

इक्षूनपः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वाऽपि कर्त्तव्याःस्नानदानादिकाःक्रियाः२

सोरठा–ऊख वारि पय मूल, औषधहूको खायके ।
तथा खाय तांबूल, स्नान दान आदिक उचित ॥२॥

ऊख, जल, दूध, फल, मूल, ताम्बूल और औषध इन वस्तुओंके भोजन करनेपर भी स्नान दान आदि क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥ ३ ॥

दोहा–दीपक तमको खाय है, तो कज्जल उपजाय ।
अन्न जैसे खात जो, तैसेइ संतति पाय ॥ ३ ॥

दीप अन्धकारको खाय जाता है और काजलको जन्माता है, जो जैसा अन्न सदा खाया जाता है उसकी वैसीही सन्तति होती है ॥३॥

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित्
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा ।
जीवान्स्थावरजङ्गमांश्च सकलान्सञ्जीव्य भूमण्डलं
भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छेत्तमम्भोनिधिम् ॥४

दोहा–गुणिहि न औरहि देइ धन, लखिय जलद जल पाय ।
मधुर कोटिगुण करि जगत, जीवन जलनिधिजाय ॥४॥

हे मतिमन् ! गुणियोंको धन दो औरोंको कभी मत दो, समुद्रसे मेघके मुखमें प्राप्त होकर जल सदा मधुर हो जाता हैं, पृथ्वीपर चर अचर सब जीवोंको जिलाकर फिर देखो, वही जल कोटि गुणा होकर उसी समुद्रमें चला जाता है ॥ ४ ॥

चाण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥५॥

दोहा–एक सहस चंडाल सम, यवन नीच इक होय ।
तत्त्वदर्शि कह यवनते, नीच और नहिं कोय ॥ ५ ॥

तत्त्वदर्शियोंने कहा है कि, सहस्र चांडालोंके तुल्य एक यवन होता है और यवनसे नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि।
तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न चाचरेत् ॥६॥

दोहा–चिताधूम तनुतेल लगि, मैथुन क्षौर बनाय।
तबलौं है चण्डालसम, जबलौं नाहिं नहाय ॥ ६ ॥

तेल लगानेपर, चिताके धूम लगनेपर, स्त्रीप्रसंग करनेपर, बाल बनवानेपर तबतक चांडाल ही बना रहता है, जबतक स्नान नहीं करता है ६

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥ ७ ॥

दोहा–वारि अजीरण औषधी, जीरणमें बलदानि।
भोजनके सँग अमृत है, भोजनान्त विष मानि ॥७॥

अपच होनेपर जल औषध है, पच जानेपर जल बलको देता है, भोजनके समय पानी अमृतके समान है और भोजनके अन्तमें विषका फल देता है ॥ ७ ॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥ ८॥

दोहा–ज्ञान क्रिया विन नष्ट है, नर नसु जो अज्ञान।
निरनायक नसु सैनहू, त्यों पति बिनु तिय जान ॥८॥

क्रियाके विना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञानसे नर मरासा है, सेनापतिके विना सेना मारी जाती है और स्वामिहीन स्त्री नष्ट होजाती है ॥८॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥ ९ ॥

दोहा—वृद्धसमय जो मरे तिय, बन्धुहाथ धन जाय।
पराधीन भोजन मिलै, यह तीनों दुखदाय ॥ ९ ॥

बुढापेमें मरी स्त्री, बन्धुके हाथमें गया धन और दूसरेके अधीन भोजन ये तीन पुरुषोंकी विडम्बना है अर्थात् दुःखदायक होते हैं ॥९॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् १०

दोहा—अग्निहोत्र विनु वेद नहिं, नहीं क्रिया विनु दान।
भाव विना नहिं सिद्धि है, सबमें भाव प्रधान ॥१०॥

अग्निहोत्रके विना वेदका पढना व्यर्थ होता है, दानके विना यज्ञादिक क्रिया नहीं बनती, भावके विना कोई सिद्धि नहीं होती, इस हेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम्।
श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसादतः ११

दोहा—धातु काठ पाषाणको, करु सेवन युतभाव।
श्रद्धासे भगवत्कृपा, तैसो तेहि सिधि आव ॥ ११ ॥

धातु, काष्ठ, पाषाणको जैसे भाव और श्रद्धासे सेवन करता है वैसीही भगवत्कृपासे सिद्धि होती है ॥ ११ ॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥१२॥

सोरठा—देव न काठ पषान, नहीं माटिहूमें रहै।
जानै सुघर सुजान, विद्यमान है भावमें ॥ १२ ॥

देवता काठमें नहीं है, न पाषाणमें है, न मृत्तिकाकी मूर्तिमें है, निश्चय है कि, देवता भावमें विद्यमान है, इस हेतु भावही सबका कारण है १२

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम् ।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयासमः ॥ १३ ॥

दोहा—शांतीसम तप और नहिं, सुख संतोष समान ।
नहिं तृष्णासम व्याधि है, धर्म दयासम आन ॥ १३ ॥

शांतिके समान दूसरा तप नहीं, न संतोषसे परे सुख, न तृषासे दूसरी व्याधि है, न दयासे अधिक धर्म है ॥ १३ ॥

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या कामदुघा धेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥ १४ ॥

दोहा—तृष्णा वैतरणी नदी, यमस्वरूप है रोष ।
कामधेनु विद्या अहै, नन्दनवन संतोष ॥ १४ ॥

क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और संतोष इन्द्रकी वाटिका है ॥ १४ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥ १५ ॥

दोहा—रूपहि गुण भूषित करै, कुल करि शील प्रकाश ।
विद्या भूषित सिद्धि करि, धन लहिं भोग विलास ॥ १५ ॥

गुण रूपको भूषित करता है, शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्याको भूषित करती है और भोग धनको भूषित करता है ॥ १५ ॥

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम् ।
असिद्धस्य हता विद्या ह्यभोगेन हतं धनम् ॥ १६ ॥

दोहा–निर्गुणका हत रूप है, हत कुशील कुलमान ।
हत विद्याहु असिद्धिकी, हत अभोग धनधान ॥१६॥

निर्गुणकी सुन्दरता व्यर्थ है, शीलहीनका कुल निंदित होता है, सिद्धि विना विद्या व्यर्थ है, भोगके विना धन व्यर्थ है ॥ १६ ॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचिःक्षेमकरो राजा सन्तुष्टो ब्राह्मणःशुचिः॥१७॥

दोहा–शुद्ध भूमिगत वारि है, नारि पतिव्रत जौन ।
क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोषि शुचि तौन ॥१७॥

भूमिगत जल पवित्र होता है,पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है,कल्याण करनेवाला राजा पवित्र गिना जाता है, ब्राह्मण संतोषी शुद्ध होता है॥

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाश्च महीभृतः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलाङ्गनाः॥१८॥

दोहा–असन्तुष्ट द्विज नष्ट है, नष्ट तुष्ट नरराज ।
नष्ट सलज्जा पातुरी, कुलनारी विन लाज ॥ १८ ॥

असन्तोषी ब्राह्मण निंदित गिने जाते हैं और सन्तोषी राजा, सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुलस्त्री निन्दित गिनी जाती है ॥१८॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् ।
दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि सुपूज्यते ॥ १९ ॥

दोहा–विद्याहीन विशालहू, कुल मनुष्य केहि काज ।
दुष्टकुलहु विद्वानको, पूजत देव समाज ॥ १९ ॥

विद्याहीन बड़े कुलसे मनुष्योंके क्या लाभ है, विद्वान्का नीच भी कुल देवताओंसे पूजा पाता है ॥ १९ ॥

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥ २० ॥

दोहा—विदुष प्रशंसित होत जग, सब थल गौरव पाय ।
विद्यासे सब मिलत हैं, सब थल सोइ पुजाय ॥२०॥

संसारमें विद्वान ही प्रशंसित होता है, विद्वान् सब स्थानमें आदर पाता है, विद्याहीसे सब मिलता है, विद्या ही सब स्थानमें पूजित होती है ॥ २० ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसंभवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः २१॥

दोहा—छवि यौवन सम्पन्नहू, जनित कुलहु अनुकूल ।
सोहु न विद्या बिनु रहित, गन्ध टेसु जिमि फूल ॥२१॥

सुन्दर तरुणतायुत और बडे कुलमें उत्पन्न विद्याहीन पुरुष ऐसे नहीं शोभते जैसे विना गन्ध पलाशके फूल ॥ २१ ॥

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खश्चाक्षरवर्जितैः ।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्तास्ति मेदिनी ॥२२॥

दोहा—मांसभक्ष मदिरा पियत, मूरख अक्षरहीन ।
नराकार पशुभार यह, पृथ्वी नाहिं सहु तीन ॥२२॥

मांसका भक्षण और मदिरापान करनेवाले, निरक्षर और मूर्ख पुरुषाकार पशुओंके भरसे पृथ्वी पीडित रहती है ॥ २२ ॥

१–यह श्लोक १७ पेजमें भी हैं.

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानं हीनदानो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥२३॥

दोहा–अन्नहीन राज्यहि दहत, दानहीन यजमान ।
मन्त्रहीन ऋत्विजन कहँ, ऋतुसम रिपु नहिं आन २३॥

यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो राज्यको, मंत्रहीन हो तो ऋत्विजोंको नीचको दान हो तो यजमानको जलाता है, इस कारण यज्ञके समान कोई भी शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥

इति अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥ १ ॥

सोरठा–मुक्ति चहो जो तात, विषयनको तजु विषसरिस ।
दया शील सच बात, शौच सरलता गहु क्षमा ॥१॥

हे भाई ! यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयोंको विषके समान छोड दो । सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाईको अमृतकी नाईं पीवो ॥ १ ॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः ।
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥ २ ॥

दोहा–जौन अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप ।
ते विलाय जैहैं यथा, मधि बिमवटको सांप ॥ २ ॥

जो नराधम परस्पर अन्तरात्माके दुःखदायक वचनको भाषण करते हैं वे निश्चयकरके नष्ट हो जाते हैं, जैसे विमौटमें पड़कर सांप ॥२॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान् धनी भूपतिर्दीर्घजीवी
धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ ३ ॥

दोहा–गन्ध सोन फल इक्षु धन, बुध चिरायु नरनाह।
सुमन मलय धाता न किय, लहु ज्ञाता गुरु नाह ॥३॥

सुवर्णमें गन्ध, ऊखमें फल, चन्दनमें फूल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया। इससे निश्चय है कि, विधाताका पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना
सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम्।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ ४ ॥

दोहा–गुरच औषधिन सुखनमें, भोजन कह्यो प्रधान।
चख इंद्रिय सब अंगमें, सिर प्रधान तिमि जान ॥४॥

सब औषधियोंमें गुरच (गिलोय) प्रधान है, सब सुखोंमें भोजन श्रेष्ठ है, सब इन्द्रियोंमें आंख उत्तम हैं, सब अंगोंमें शिर श्रेष्ठ है॥४॥

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्ता
पूर्वं न जल्पितमिदं न च सङ्गमोऽस्ति।

व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ५

दोहा–दूत वचन गति संग नाहिं, नभ न आदि कहु कोय ।
शशिरविग्रहण बखानु जो, द्विज न विदुष किमि होय ५

आकाशमें दूत नहीं जा सकता, न वार्ताकी चर्चा चल सकती, पहिलेहीसे किसीने कह रक्खा है और न किसीसे सङ्गम हो सकता है, ऐसी दशामें आकाशमें स्थित सूर्यचन्द्रके ग्रहणको जो द्विजपर स्पष्ट जानता है, वह कैसे विद्वान् नहीं है ? ॥ ५ ॥

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधार्तो भयकातरः ।
भाण्डारी प्रतिहारश्च सप्त सुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

दोहा–द्वारपाल सेवक पथिक, सभय क्षुधारत पाय ।
भांडारी विद्यारंथी, सोवत सात जगाय ॥ ६ ॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूंखसे पीडित, भयसे कातर, भाण्डारी और द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगा देना चाहिये ॥ ६ ॥

अहिं नृपं च शार्दूलं विटं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥ ७ ॥

दोहा–भूपति मृगपति मूढपति, त्यौं शूकर औ बाल ।
सोवत सात जगाइये, नहिं पर कूकर व्याल ॥ ७ ॥

सांप, राजा, व्याघ्र, सूअर वैसे ही बालक, दूसरेका कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः ।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः॥८॥

दोहा—अर्थहेतु वेदहि पढ़े, खाय शूद्रको धान ।
ते द्विज क्या कारि सकत हैं, विन विष व्यालसमान॥८॥

जिन्होंने धनके अर्थ वेदको पढा, वैसे ही जो शूद्रका अन्न भोजन करते हैं वे ब्राह्मण विषहीन सर्पके समान क्या कर सकते हैं ॥ ८॥

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥९॥

दोहा—रुष्ट भये भय तुष्टसे, नहीं धनागम होय ।
दंड सहाय न कारि सके, का रिसाय करु सोय ॥९॥

जिसके क्रुद्ध होनेपर न भय है, प्रसन्न होनेपर न धनका लाभ, न दण्ड या अनुग्रह हो सकता है, वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥ ९ ॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फणा ।
विषमस्तु न चाप्यस्तु फटाटोपो भयङ्करः ॥१०॥

दोहा—विन विषहूके सांपको, चाहिय फनैं वढ़ाय ।
होउ नहीं वा होउ विष, फटाटोप भयदाय ॥ १० ॥

विषहीन सांपको भी अपनी फणा वढानी चाहिये, इस कारण कि विष हो वा न हो आडम्बर भयजनक होता है ॥ १० ॥

प्रातर्द्यूतप्रसङ्गेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः ।
रात्रौ चोरप्रसङ्गेन कालो गच्छति धीमताम् ॥११॥

दोहा—प्रातः द्यूतप्रसंगसे, मध्य स्त्रीपरसंग ।
सायं चोर प्रसंग कह, काल गेह तब अंग ॥ ११ ॥

प्रातःकालमें जुआरियोंकी कथासे अर्थात् महाभारतसे, मध्याह्नमें स्त्रीके प्रसंगसे अर्थात् रामायणसे, रात्रिमें चोरकी वार्तासे अर्थात् भागवतसे बुद्धिमानोंका समय बीतता है। तात्पर्य यह कि, महाभारतके सुननेसे यह निश्चय हो जाता है कि जुवा और कलह छलका घर है, इस लोक और परलोकमें उपकार करनेवाले कर्मोंको महाभारतमें लिखो हुई रीतियोंसे करनेपर उन कामोंका पूरा फल होता है, इस कारण बुद्धिमान् लोग प्रातःकाल ही महाभारतको सुनते हैं जिससे दिनभर उसी रीतिसे काम करते जायँ। रामायण सुननेसे स्पष्ट उदाहरण मिलता हैं कि, स्त्रीके वश होनेसे अत्यन्त दुःख होता है और परस्त्रीपर दृष्टि देनेसे पुत्र कलत्र जड़ मूलके साथ पुरुषका नाश हो जाता है, इस हेतु मध्याह्नमें अच्छे लोग रामायणको सुनते हैं। प्रायः लोग इन्द्रियोंके वश होजाते हैं और इन्द्रियोंका यह स्वभाव है कि मनको अपने २ विषयोंमें लगाकर जीवको विषयोंमें लगा देती हैं, इसी हेतुसे इन्द्रियोंको आत्माहारी भी कहते हैं और जो लोग रातको भागवत सुनते हैं वे कृष्णके चरित्रको स्मरण करके इन्द्रियोंके वश नहीं होते क्योंकि सोलह हजारसे अधिक स्त्रियोंके रहते भी कृष्णचन्द्र इन्द्रियोंके वश न हुए और इन्द्रियोंके समयकी रीति भी जान जाते हैं ॥ ११ ॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् १२

दोहा—सुमन माल निजकर रचित, स्वलिखित पुस्तक पाठ ।
धन इंद्रहु नाशै दिये, स्वघासित चन्दन काठ ॥ १२ ॥

अपने हाथसे गुथी माला, अपने हाथसे घिसा चन्दन, अपने हाथसे लिखा स्तोत्र ये इन्द्रकी भी लक्ष्मीको हर लेते हैं ॥ १२ ॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम च मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्धनम् ॥ १३ ॥

दोहा—ऊख शूद्र दधि नायिका, हेम मेदिनी पान ।
तिल चन्दन इन नवनको, मर्दन ही गुण जान ॥१३॥

ऊख, तिल, शूद्र, कान्ता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही और पान इनका मर्दन गुणवर्द्धन है ॥ १३ ॥

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।
कदन्नता चोष्णतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते ॥ १४ ॥

दोहा—दारिद सोहत धीरते, कुपट शुभ्रता पाय ।
लहि कुअन्न उष्णत्वको, शील कुरूप सुहाय ॥ १४ ॥

दरिद्रता भी धीरतासे शोभती है, स्वच्छतासे कुवस्त्र सुंदर जान पडता हैं, कुअन्न भी उष्णतासे मीठा लगता है, कुरूपता भी सुशील हो तो शोभती है ॥ १४ ॥

इति (वृद्धचाणक्ये) नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इति पूर्वार्द्धम् ।

ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ ७ ॥

दोहा—धर्म शील गुण नाहिं जेहि, नहिं विद्या तप दान ।
मनुजरूप भुवि भार तेहि, विचरत मृगकरि जान ॥७॥

जिन लोगोंमें न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है और न धर्म है वे संसारमें पृथ्वीपर भाररूप होकर मनुष्यरूपसे मृगसा फिर रहे हैं ॥ ७ ॥

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥ ८ ॥

सो०—शून्य हृदय उपदेश, नाहिं लगै कैसो करिय ।
बसै मलयगिरिदेश, तऊ बांसमें बास नहिं ॥ ८ ॥

गम्भीरता विहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता मलयाचलके संगसे बांस चन्दन नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥९॥

दोहा—स्वाभाविक नहिं बुद्धि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह ।
जो नर नयनविहीन है, दर्पणसे का ताह ॥ ९ ॥

जिसको स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या कर सकता है ? जैसे—आंखोंसे हीनको दर्पण क्या करेगा ? ॥ ९ ॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो नहि भूतले ।
अपानं शतधा धौतं न भवेच्छ्रेष्ठमिन्द्रियम् ॥१०॥

दोहा—दुर्जन सज्जन करनको, भूतल नहीं उपाय ।
है अपान शुचि इन्द्रि नहिं, सौ सौ धोई जाय ॥१०॥

दुर्जनको सज्जन करनेके लिये पृथ्वीतलमें कोई उपाय नहीं है, मलके त्याग करनेवाली इंद्रिय सौवार भी धोई जाय तो भी श्रेष्ठ इंद्रिय न होगी ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥ ११ ॥

दोहा—सतविरोधते मृत्यु मिले, धनक्षय करि आरि द्वेष ।
राजद्वेषसे नशत है, कुलक्षय करु द्विज द्वेष ॥ ११ ॥

बड़ोंके द्वेषसे मृत्यु, शत्रुके विरोध करनेसे धनका क्षय होता है, राजाके द्वेषसे नाश और ब्राह्मणके द्वेषसे कुलका क्षय होता है॥११॥

वरं वने व्याघ्रगजेन्द्रसेविते
द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ १२ ॥

छन्द—गज बाघ सेवित वृक्ष तर वनमाहिं बरु रहिबो करै ।
अरु पत्र फल जल सेवनो तृण सेज बरु लहिबो करै॥
शत छिद्र बल्कल वस्त्र करि बहुकाल यह गहिबो करै।
निजबंधुमँह धनहीन है नहिं जीवनो चहिबो करै॥१२॥

वनमें बाघ और बडे २ हाथियोंसे सेवित वृक्षके नीचेके पत्ता फल खाना वा जलका पीना, घासपर सोना, सौ टुकडेके वल्कलोंको पहिनना ये श्रेष्ठ हैं पर बन्धुओंके मध्यमें धनहीनका जीना श्रेष्ठ नहीं है॥१२॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥ १३ ॥

छन्द-विप्र वृक्ष है मूल संध्या वेद शाखा जानिये ।
धर्म कर्म हैं पत्र दोऊ मूलको नहिं नाशिये ॥
जो नष्ट मूल ह्वै जाय तो कुछ शाख पात न फूटिये ।
यही नीति सुनीति है की मूल रक्षा कीजिये ॥ १३ ॥

ब्राह्मण वृक्ष है; उसकी जड संध्या है, वेद शाखा है और धर्म पत्ते हैं, इस कारण प्रयत्न करके जडकी रक्षा करनी चाहिये, जड कट जानेपर न शाखा रहेगी और न पत्ते ॥ १३ ॥

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥

दोहा-लक्ष्मी देवी मातु है, पिता विष्णु सर्वेश ।
कृष्णभक्त बंधू सभी, तीन भुवन निजदेश ॥ १४ ॥

जिसकी लक्ष्मी माता है और विष्णु भगवान् पिता है और विष्णुभक्त बांधव हैं उसको तीनों लोक स्वदेश ही है ॥ १४ ॥

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहङ्गमाः ।
प्रभाते दिक्षु दशसु यान्ति का परिदेवना ॥ १५ ॥

दोहा-बहुविधि पक्षी एक तरु, जो बैठे निशि आय ।
भोर दशों दिशि उडि चले, वह कोही पछिताय ॥ १५ ॥

नानाप्रकारके पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं, प्रभात समय दश दिशामें होजाते हैं उसमें क्या शोच है ? ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् ।
वने सिंहो मदोन्मत्तो जम्बुकेन निपातितः॥ १६॥

दोहा–बुद्धि जासु है सो बली, निर्बुधिके बल नाहिं ।
अतिबल सिंहहि स्यार लघु, चतुर हतेसि वनमाहिं १६

जिसको बुद्धि है, उसको बल है, निर्बुद्धिको बल कहांसे होगा ? देखो वनमें मदसे उन्मत्त सिंह सियारसे मारा गया ॥ १६ ॥

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते
नोचेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत् ।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते १७

छन्द–है नाम हरीको जगपालक मन जीवन शंका क्यों करनी ।
नहीं तो बालक जीवनको तनुसे पय निसरत क्यों जननी ।
यही जानकर बार बार हे यदुपति लक्ष्मीपति तेरे ।
चरणकमलके सेवनसे दिन बीते जायँ सदा मेरे ॥१७॥

मेरे जीवनमें क्या चिंता है यदि हरि विश्वका पालनेवाला कहलाता है, ऐसा न हो तो बच्चोंके जीनेके हेतु माताके स्तनमें दूध कैसे बनाते? इसको वारंवार विचार करके हे यदुपति ! हे लक्ष्मीपति ! सदा केवल आपके चरणकमलकी सेवामें मैं समयको विताता हूँ ॥१७॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धि-
स्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम् ।

यथा सुराणाममृते च सेविते
स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥ १८ ॥

सोरठा—देववैन बुधि वेश, तऊ और भाषा चहौं ।
यदपि सुधा सुर देश, चहैं अपसरन—अधररस १८

यद्यपि संस्कृत भाषामें ही विशेष ज्ञान है तथापि दूसरी भाषाका भी लोभी हूं, जैसे अमृतके रहते भी देवताओंकी इच्छा स्वर्गकी स्त्रियोंके ओष्ठके आसवमें रहती है ॥ १८ ॥

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥ १९ ॥

दोहा—चून दशगुणो अन्नते, ता दश गुण पय जान ।
पयते अठगुण मांस है, तेहि दशगुण घृत मान ॥१९॥

चावलसे दशगुणा पिसान (चून) में गुण है, पिसानसे दशगुणा दूधमें, दूधसे आठगुणा मांसमें, मांससे दशगुणा घीमें ॥ १९ ॥

शाकेन वर्धते रोगः पयसा वर्धते तनुः ।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते ॥ २० ॥

दोहा—रोग बढत है शाकसे, पयसे बढ़त शरीर ।
घृत खाये बीरज बढै, मांस मांस गंभीर ॥ २० ॥

शाकसे रोग, दूधसे शरीर, घीसे वीर्य और मांससे मांस बढता है॥

इति (वृद्धचाणक्ये) दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ११.

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः ॥१॥

दोहा—दानशक्ति प्रिय बोलिबो, धीरज उचित विचार ।
ये गुण सीखे ना मिलैं, स्वाभाविक हैं चार ॥ १ ॥

उदारता, प्रिय बोलना, धीरता और उचितका ज्ञान ये अभ्याससे नहीं मिलते, ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयन् ।
स्वयमेव लयं याति यथा राज्यमधर्मतः ॥ २ ॥

दोहा—वर्ग आपनो छोडिके, गहे वर्ग जो आन ।
सो आपुइ नशि जात है, राज्य अधर्म समान ॥२॥

जो अपनी मंडलीको छोड परके वर्गका आश्रय लेता है वह आप ही लयको प्राप्त होजाता है, जैसे राजाके अधर्मसे राज्य ॥ २ ॥

हस्ती स्थूलतनुः स चाङ्कुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः । वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रा नगास्तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥ ३ ॥

स०—भारी करि रहे अंकुशके वश का वह अंकुश भारी करीसों।
त्यों तमपुंजहि नाशत दीपसो दीप कहू अँधियार सरीसों॥

वज्रके मारे गिरै गिरिहू कहुं होय भला वह वज्र गिरीसों।
तेजहैजासु सोईवलवान्कहा विशवासशरीरवरीसों॥ ३॥

हाथीका स्थूल शरीर है वह भी अंकुशके वश रहता है तो क्या हस्तीके समान अंकुश है ? दीपके जलनेपर अंधकार आपही नष्ट हो जाता है, तो क्या दीप तमके तुल्य है ? विजुलीके मारे पर्वत गिर जाते हैं तो क्या विजुली पर्वतके समान है ? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह वलवान् गिना जाता है, मोटेका कौन विश्वास है ? ३

कलौ दशसहस्राणि विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम् ।
तदर्द्धं जाह्नवी तोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

दोहा–दश हजार बीतै बरस, कलिमें तजि हरि देहि ।
तासु अर्द्ध सुरनदी जल, ग्रामदेव आधे तेहि ॥ ४ ॥

कलियुगमें दशसहस्र वर्षके वीतनेपर विष्णु पृथ्वीको छोड देते हैं, उसके आधेपर गंगाजी जलको, उसके आधेके बीतनेपर ग्रामदेवता ग्रामको ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दया मांसभोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता ॥५॥

दोहा–विद्या गृह आसक्तको, दया मांस जे खाहिं ।
लुब्धहि सतता हो नहीं, जारहि शुचिता नाहिं ॥५॥

गृहमें आसक्त पुरुषोंको विद्या, मांसके आहारीको दया, द्रव्यके लोभीको सत्यता और व्यभिचारीको पवित्रता नहीं होती ॥ ५ ॥

न दुर्जनः साधुदशामुपैति
बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।

आमूलसिक्तः पयसा घृतेन
न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥ ६ ॥

दोहा—साधुदशाको नहिं लहै, दुर्जन बहु शिख पाय।
दूध घीवसे सींचये, नींव न तदपि मिठाय ॥ ६ ॥

निश्चय है कि, दुर्जन अनेक प्रकारसे सिखलाया भी जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती, दूध और घीसे मूलसे पल्लवपर्यंत नींबका वृक्ष सींचा भी जाय पर उसमें मधुरता नहीं आती ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि।
न शुद्ध्यति यथा भांडं सुराया दाहितं च तत्॥७॥

दोहा—मनमलीन खल तीर्थमें, यदि सौवार नहाहिं।
होय शुद्ध नहिं जिमि सुरा, बासन दीनेहु दाहि ॥७॥

जिसके हृदयमें पाप है वही दुष्ट है, वह तीर्थमें सौवार स्नानसे भी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिराका पात्र जलाया भी जाय तो भी शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भलब्धां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥ ८ ॥

चा० छ०—जो न जानु उत्तमत्व जाहिके गुणानकी।
निन्दतो सो ताहि तो अचर्ज कौन खानकी ॥
ज्यों किराति हाथिमाथ मोतियां विहायकै।
घूंघची पहीनती विभूषणै बनायकै ॥ ८ ॥

जो जिसके गुणकी प्रकर्षता नहीं जानता वह निरन्तर उसकी निन्दा करता है, जैसे भिल्लिनी हाथीके मस्तकके मोतीको छोड़ घुँघुचीको पहिनती है ॥ ८ ॥

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटिसहस्रान्ते पूज्यन्ते स्वर्गविष्टपे ॥ ९ ॥

दोहा—जो पूरे इक बरसभर, मौनधार नित खात ।
युगकोटिनके सहसतक, स्वर्गमाहिं पुजि जात ॥९॥

जो वर्षभर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह सहस्र कोटियुग स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥ ९ ॥

कामक्रोधौ तथा लोभं स्वादु शृङ्गारकौतुके ।
अतिनिद्रातिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥१०॥

सो०—काम क्रोध अरु स्वाद, लोभ शृंगारहि कौतुकहि ।
अतिसेवा निद्राहि, विद्यार्थी आठों तजै ॥ १० ॥

काम, क्रोध, लोभ, मीठी वस्तु, शृंगार, खेल, अतिनिद्रा और अति सेवा इन आठोंको विद्यार्थी छोड देवे ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥ ११ ॥

दोहा—बिन जोते महि फूल फल, खाय रहे वनमाहिं ।
श्राद्ध करै जो प्रतिदिवस, कहिय विप्र ऋषि ताहिं ११॥

विना जोती भूमिसे उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा वनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण 'ऋषि' कहलाता है ११॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा।
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते॥१२॥
सोरठा—एकैबार अहार, तुष्ट सदा षट्कर्म रत।
ऋतुमें प्रिया विहार, करे विप्र सो द्विज कहै॥१२॥

एक समयके भोजनसे संतुष्ट तथा पढना, पढाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना और लेना इन छः कामोंमें सदा रत हो और ऋतुकालमें स्त्रीका संग करे तो ऐसे ब्राह्मणको 'द्विज' कहते हैं॥ १२॥

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः।
वाणिज्यकृषिकर्मा यः स विप्रो वैश्य उच्यते॥१३॥
सो०—निरत लोकके कर्म, पशु पालै वानिज करै।
खेतीमें मन कर्म, करे विप्र सो वैश्य है॥ १३॥

सांसारिक कर्ममें रत हो और पशुओंका पालन, बनियाई और खेती करनेवाला हो वह विप्र 'वैश्य' कहलाता है॥ १३॥

लाक्षादितैलनीलीनां कौसुम्भमधुसर्पिषाम्।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते॥१४॥
सो०—लाख आदि मद मांसु, घीव कुसुम अरु नीलि मधु।
तैल बेचियत तासु, शूद्र जानिये विप्र यदि॥ १४॥

लाख आदि पदार्थ, तेल, नीली, कुसुम, मधु, घी, मद्य और मांस जो इनको बेचनेवाला हो वह ब्राह्मण 'शूद्र' कहा जाता है॥१४॥

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते॥१५॥

सो०—दंभी स्वारथ शूर, पर कारज घाले छली ।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र बिलार कहावतो ॥ १५ ॥

दूसरेके कामको बिगाडनेवाला,दम्भी, अपने ही अर्थको साधनेवाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरणमें कडा हो तो वह ब्राह्मण ' बिलार ' कहा जाता है ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराशङ्कः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते १६॥

सो०—कूप बावली बाग, औ तडाग सुरमन्दिरहि ।
नाशैमें भय त्याग, मलिछ कहावे विप्र सो ॥ १६ ॥

बावली, कुवां, तालाब, वाटिका, देवालय इनके उच्छेद करनेमें जो निडर हो वह ब्राह्मण ' म्लेच्छ ' कहलाता है ॥ १६ ॥

देवद्रव्य गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ १७ ॥

सो०—परनारीरत जोय, जो सुर गुरुधनको हरै ।
द्विज चांडाल सो होय, सबमें करु निर्वाह जो ॥१७॥

देवताका द्रव्य और गुरुका द्रव्य जो हरता है और परस्त्रीसे संग करता है और सब प्राणियोंमें निर्वाह कर लेता है वह विप्र 'चाण्डाल' कहलाता है ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो सञ्चयस्तस्य वै श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता । अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात्

सो०–दंभी स्वारथ शूर, पर कारज घाले छली ।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र बिलार कहावतो ॥ १५ ॥

दूसरेके कामको बिगाडनेवाला,दम्भी, अपने ही अर्थको साधनेवाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरणमें कडा हो तो वह ब्राह्मण ' बिलार ' कहा जाता है ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराशङ्कः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते १६॥

सो०–कूप बावली बाग, औ तडाग सुरमन्दिरहि ।
नाशैमें भय त्याग, मलिछ कहावे विप्र सो ॥ १६ ॥

बावली, कुवां, तालाब, वाटिका, देवालय इनके उच्छेद करनेमें जो निडर हो वह ब्राह्मण ' म्लेच्छ ' कहलाता है ॥ १६ ॥

देवद्रव्य गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ १७ ॥

सो०–परनारीरत जोय, जो सुर गुरुधनको हरै ।
द्विज चांडाल सो होय, सबमें करु निर्वाह जो ॥१७॥

देवताका द्रव्य और गुरुका द्रव्य जो हरता है और परस्त्रीसे संग करता है और सब प्राणियोंमें निर्वाह कर लेता है वह विप्र 'चाण्डाल' कहलाता है ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो सञ्चयस्तस्य वै श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता । अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात्

सञ्चितं निर्वाणादिति नैजपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिकाः॥ १८ ॥

स०—मतिमानको चाहिये की धन भोजन संचहिं नाहीं दियोई करैं । यहिते बलि विक्रम कर्णहु कीरति आजुलौं लोग कह्योई करैं ॥ चिरसंचि मधू हमलोगनकी विनु भोगे दियें नसिबोई करैं । यह जानि भये मधु नाश दोऊ मधुमाखियां पांव घिसोई करैं ॥ १८ ॥

सुकृतियोंको चाहिये कि, भोगयोग्य धनको और द्रव्यको देवें कभी न संचय करें, क्योंकि—कर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन राजाओंकी कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्तमान है । दान भोगसे रहित बहुत दिनसे संचित हमारे लोगोंका मधु नष्ट हो गया, ऐसा देखकर मधुमक्खियां मधुके नाश होनेके कारण अपने दोनों पावोंको घिसा करती हैं॥१८॥

इति (वृद्धचाणक्ये) एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कान्ता प्रियालापिनी इच्छापूर्तिधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः । आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥ १ ॥

स०—सानँद मंदिर पंडित पूत सुबोल रहै पुनि प्राणपियारी । इच्छित सम्पति पूरि स्वतीय रती रहै सेवक भौंह निहारी

आतिथ औ शिवपूजन रोज रहै घर संचय सुअन्न औ वारी।
साधुन संग उपासन है नित धन्य अहै गृह आश्रमधारी १

यदि आनन्दयुत घर मिले और लडके पंडित हों, स्त्री मधुरभाषिणी हो, इच्छाके अनुसार धन हो, अपनी ही स्त्रीमें रति हो, आज्ञापालक सेवक मिलें, अतिथिकी सेवा और शिवकी पूजा हो, प्रतिदिन गृहमें मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधुके संगकी उपासना है तो यह गृहस्थाश्रमही धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च
यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम् ।
अनन्तपारं समुपैति राजन्
यद्दीयते तन्न लभेद् द्विजेभ्यः ॥ २ ॥

दोहा–दिय श्रद्धा रु दयासँयुत, आरत विप्रहिं जौन ।
थोरो मिलै अनंत ह्वै, उतनो ही नहिं तौन ॥ २ ॥

जो दयावान् पुरुष आर्त ब्राह्मणोंको श्रद्धासे थोडा भी दान देता है उस पुरुषको अनन्त होकर वह मिलता है, न कि जो ब्राह्मणोंको दिया जाता है उतना ही मिलता है ॥ २ ॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिःसाधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम्।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता इत्थं
ये पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ३

कवित्त–दक्षता स्वजन बीच दया परजनबीच, शठता सदाही रहे बीच दुरजनके । प्रीति साधुजनमें खलन माहिं

अभिमान, सरलस्वभाव रहै बीच पंडितनके॥शत्रुनमें शूरता सयाननमें क्षमा पूर, धुरताई राख फेर बीच नारीजनके । ऐसे सब कलामें कुशल रहैं जे ते लोग, लोक थिति रहि रहै बीच तिनहिनके॥ ३ ॥

अपने जनमें दक्षता, दूसरे जनमें दया, दुर्जनमें सदा दुष्टता, साधुजनमें प्रीति, खलमें अभिमान, विद्वानोंमें सरलता, शत्रुजनमें शूरता, बड़े लोगोंके विषयमें क्षमा, स्त्रीसे काम पड़नेपर धूर्तता इस प्रकारसे जो लोग कलामें कुशल होते हैं उन्हींमें लोककी मर्यादा रहती है॥३॥

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो रे रे
जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥४॥

ह० छ०—यह पाणि दानविहीन कान पुरान वेद सुने नहीं ।
अरु आंखि साधुन दर्शहीन न पाँव तीरथ गे कहीं॥
अनियाय वित्तभरो सुपेट उठ्यो शिरा अभिमानहीं।
वपु नीच निन्दित छोडुछोडु अरे सियार सो वेगहीं४

हाथ दानरहित हैं, कान वेदशास्त्रके विरोधी हैं, नेत्रोंने साधुका दर्शन नहीं किया, पांवोंने तीर्थगमन नहीं किया, अन्यायसे अर्जित धनसे उदर भरा है और गर्वसे शिर ऊँचा हो रहा है, रे रे सियार! ऐसे नीच निंद्य शरीरको शीघ्र छोड़ ॥ ४ ॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्ति-
र्नराणां येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता

रसज्ञा । येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौ नैव कर्णौ धिक्तान्धिक्तान्धिगेतान् कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदङ्गः ॥ ९ ॥

छंद–जो नर यशुमति सुतचरननमें भक्ति हृदयसे नहिं रखते।
जो राधाप्रिय कृष्णचन्द्रके गुण जिह्वासे नहिं रटते ।
जिनकेदोउकाननमांहिंकथारस कृष्णचन्द्रके नहिं गिरते ।
कीर्तनमाहिं मृदंग तिन्हें धिक धिक अपनी ध्वनिसे कहते९

श्रीयशोदासुतके पदकमलमें जिन लोगोंकी भक्ति नहीं रहती, जिन लोगोंकी जीभ अहीरोंकी कन्याओंके प्रिय अर्थात् श्रीकृष्णके गुणगानमें प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्णजीकी लीलाकी ललित कथाका आदर जिनके कान नहीं करते उन लोगोंको धिक है धिक है धिक है ऐसे कीर्तनका मृदंग सदा कहता है ॥ ९ ॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् । वर्षा नैव पतेच्चु चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥ ६ ॥

स०–पात न होय करीलनमें यदि,दोष वसन्त हि कौन तहां है ।
त्यों जब देखि सकै न उलूक,दिनै तहँ सूरज दोष कहां है॥
चातक आनन बूँद परै नहिं, मेघन दूषण कौन वहां है ।
जोकुछ पूरब माथ लिखा विधि,मेटनको समरत्थ कहांहै६

यदि करीलके वृक्षमें पत्ते नहीं होते तो वसन्तका क्या अपराध है? यदि उलूक दिनमें नहीं देखता तो सूर्यका क्या दोष है? वर्षा चातकके मुखमें नहीं पडती तो इसमें मेघका क्या अपराध है? पहिले ही ब्रह्माने जो कुछ ललाटमें लिख रक्खा है उसे मिटानेको कौन समर्थ है? ॥ ६ ॥

सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानां साधूनां न हि खलसङ्गतः खलत्वम्। आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति ॥ ७ ॥

व॰ति॰–सत्संगसों खलहु साधु स्वभाव सेवैं।
साधू न दुष्टपन संग परेउ लेवैं ॥
माटीहि वास कछु फूलन केरि पावै।
माटीसुवास कहुँ फूल नहीं बसावै ॥ ७ ॥

निश्चय है कि, अच्छेके संगसे दुर्जनोंमें साधुता आजाती है, परंतु साधुओंमें दुष्टोंकी संगतिसे असाधुता नहीं आती, फूलके गन्धको मट्टी ले लेती है, पर मट्टीके गन्धको फूल कभी नहीं धारण करते ॥ ७ ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥ ८ ॥

दोहा–साधूदर्शन पुण्य है, साधु तीर्थके रूप।
काल पाय तीरथ फलैं, तुरतहि साधु अनूप ॥ ८ ॥

साधुओंका दर्शनही पुण्य है। इस कारण कि, साधु तीर्थरूप है। समयसे तीर्थ फल देता है, साधुओंका संग शीघ्रही काम कर देता है ॥ ८ ॥

विप्रास्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः
को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि।
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः
कस्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्य-
हम् ॥ ९ ॥

कवित्त–कहो या नगरमें महान कौन ? विप्र ! तौन तारनके
वृक्षके कतारके कतार हैं। दाता कहो कौन है ? रजकं
देत सांझ आनि धोय शुभ्र वस्त्रनको लेत जो सकार
है ॥ दक्ष कहौ कौन है? प्रत्यक्ष सबही है दक्ष हरनका
कुशल परायो धनदार हैं।कैसे तुम जीवत बताय कहो
मोसो मीत ! विषकृमिन्याय करलीजै निरधार है ९

हे विप्र ! इस नगरमें कौन बडा है ? ताडके पेडोंका समुदाय, कौन दाता है ? धोवी प्रातःकाल वस्त्र लेता है रात्रिमें दे देता है, चतुर कौन है ? दूसरेके धन और स्त्रीके हरणमें सबही कुशल हैं, तो ऐसे नगरमें आप कैसे जीते हो ? हे मित्र ! विषका कीडा विषहीमें जीता है वैसे ही मैं भी जीता हूँ ॥ ९ ॥

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जि-
तानि । स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि श्मशान-
तुल्यानि गृहाणि तानि ॥ १० ॥

दोहा–विप्रचरणके उदकसे, होत जहां नहिं कीच ।
वेद ध्वनि स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ॥ १० ॥

जिन घरोंमें ब्राह्मणोंके पावोंके जलसे कीचड न भया हो और न वेदशास्त्रके शब्दकी गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधासे रहित हो उसको श्मशानके समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ११

सोरठा–सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम ।
तिया शान्ति सुत जान, क्षमा यही षट् बन्धु मम ११

सत्य मेरी माता है और ज्ञान पिता है, धर्म मेरा भाई है और दया मित्र, शांति मेरी स्त्री है और क्षमा पुत्र ये ही छः मेरे बन्धु हैं। किसी संसारी पुरुषने ज्ञानीको देखकर चकित हो पूछा कि संसारमें माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र ये जितना ही अच्छासे अच्छे हों उतनाही संसारमें आनन्द होता है, तुझको परम आनन्दमें मग्न देखता हूं तो तुझको भी कहीं न कहीं कोई उनमेंसे होगा. ज्ञानीने समझा कि, जिस दशाको देखकर यह चकित है वह दशा क्या सांसारिक कुटुम्बोंसे हो सकती है? इस कारण जिनसे मुझे परम आनंद होता है उन्हींको इससे कहूँ, कदाचित् यह भी इनको स्वीकार करे ॥ ११ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१२॥

सोरठा–है अनित्य यह देह, विभव सदा नाहिं न रहै ।
निकट मृत्यु नित येह, चहिय कीन्ह संग्रह धरम १२॥

शरीर अनित्य है, विभव भी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकट ही रहती है, इस कारण धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः ।
पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्ण रणोत्सवः॥१३॥

दोहा—नेवतन द्विजको है हरी, गौअनको नव घास ।
पति उत्सव युवतीनको, मोहिं उत्सव रण खास॥१३॥

निमन्त्रण ब्राह्मणोंका उत्सव है और नवीन घास गौओंका उत्सव है, पतिके उत्साहसे स्त्रियोंको उत्साह होता है, हे कृष्ण ! मुझको रणही उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥१४॥

दोहा—परधन माटीके सरिस, परतिय माता भेख ।
आपु सरीखे जगत सब, जो देखे सो देख ॥ १४ ॥

दूसरेकी स्त्रीको माताके समान, दूसरेके द्रव्यको ढेलाके समान और अपने समान सब प्राणियोंको जो देखता है वही देखता है॥१४॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्तिभोराघव१५

कवित्त—धर्म माहिं रुचि मुख मीठी वानि दान विच, शक्ति मित्र संग नाहिं ठगनेकी बानि है । वृद्धनमें नम्रता रु मनमें गंभीरता है, शुद्ध है अचार गुण विचार सज्ञान है ॥ शास्त्रको विशेष ज्ञान रूप हू सुहावनो है, शिवजूके भजनको सब काल

Shri ...

ध्यान है । कहे पुष्पवंत ज्ञानी राघो बीच जानो सब, और इकठौर कहीं इनको न भान है ॥ १५ ॥

धर्ममें तत्परता,मुखमें मधुरता, दानमें उत्साहता, मित्रके विषयमें निश्छलता,गुरुसे नम्रता, अन्तःकरणमें गंभीरता, आचारमें पवित्रता, गुणमें रसिकता, शास्त्रोंमें विशेषज्ञान, रूपमें सुन्दरता और शिवकी भक्ति, हे राघव ! ये आपहीमें हैं ॥ १५ ॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारांनिधिः। कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौ-र्नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते १६

कवित्त—कल्पवृक्ष काठ अरु अचल सुमेरु अहै, चिंतामणि
रत्नहू पषाण जाति जानिये। सूरजमें उष्णता रु कला-
हीन चन्द्रमा सो, सागरहू जल महाखारा यह जानिये ॥
कामदेव नष्टतनु अरु राजा बली दैत्य, सुत कामधेनु
गौकी पशुजाति मानिये । उपमा श्रीरामजूकी इनसे
कछू ना तुलै, और कौन वस्तु जासो उपमा बखानिये १६

कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है, चिंतामणि पत्थर है, सूर्यकी किरण अत्यन्त उष्ण है,चन्द्रमाकी किरण क्षीण होजाती है, समुद्र खारा है, कामको शरीर नहीं है, बलि दैत्य है, कामधेनु सदा पशु ही है, इस कारण आपके साथ इनकी तुलना नहीं दे सकते हैं, हे रघुपति ! फिर आपको किसकी उपमा दी जाय ॥ १६ ॥

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥१७॥

दोहा—विद्या मित्र विदेशमें घरमें नारी मित्र ।
रोगिहि औषध मित्र है, मरे धर्म है मित्र ॥ १७ ॥

प्रवासमें विद्या हित करती है,घरमें स्त्री मित्र है,रोगग्रस्त पुरुषका हित औषध होता है और धर्म मरेका उपकार करता है ॥ १७ ॥

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥१८॥

दोहा—राजतनयसे विनय अरु, बुधसे सुन्दर बात ।
झूठ जुवारिनसे कपट, तियसों सीखी जात ॥ १८ ॥

सुशीलता राजाके लडकोंसे, प्रियवचन पंडितोंसे,असत्य जुआरियोंसे और छल स्त्रियोंसे सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

अनालोक्य व्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा—विनु विचार खर्चा करै, झगरे विनहि सहाय ।
आतुर सब तियमों रहे, सो नर वेगि नशाय ॥ १९ ॥

विना विचारे व्यय करनेवाला, सहायके न रहनेपर भी कलहमें प्रीति रखनेवाला और सब जातिकी स्त्रियोंमें भोगके लिये व्याकुल होनेवाला पुरुष शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १९ ॥

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत् ।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥२०॥

दोहा—नहिं आहार चिन्तहि सुमत, चिन्तहि धर्महि एक ।
होहिं साथही नरनके, नराहिं अहार अनेक ॥२०॥

पंडितको आहारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, एक धर्मको निश्चयसे शोचना चाहिये, इस हेतु कि, आहार मनुष्योंको जन्मके साथही उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासङ्ग्रहणे तथा ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२१॥

दोहा—लेन देन धन अन्नके, विद्या पढ़ने माहिं ।
भोजन सभा विवादमें, तजै लाज सुख माहिं ॥२१॥

धनधान्य व्यवहार करनेमें, वैसे ही विद्याके पढ़ने पढ़ानेमें, आहारमें और राजाकी सभामें, किसीके साथ विवाद करनेमें जो लज्जाको छोड़े रहेगा वही सुखी होगा ॥ २१ ॥

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥२२॥

दोहा—एक एक जलबूंदके, परते घट भरि जाय ।
सब विद्या धन धर्मको, कारण यही कहाय ॥ २२ ॥

क्रमसे जलके एक एक बून्दके गिरनेसे घडा भर जाता है, यही सब विद्या, धर्म और धनका भी कारण है ॥ २२ ॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः ।
सुपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥ २३ ॥

दोहा—बीति गयेहू उमरिके, खल खलही रहिजाय ।
पकेहु मिठाई गुण कहीं, नाहीं वारुण पाय ॥ २३ ॥

जो खल रहता है सो वयके परिणाम पर भी खल ही बना रहता है । अत्यन्त पकी भी तिक्त लौकी मीठी नहीं होती ॥ २३ ॥

इति (वृद्धचाणक्ये) द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

मुहूर्तमपि जीवेच्चेन्नरः शुक्लेन कर्मणा ।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥ १ ॥

दोहा—वरु नर जिव मुहूर्त्तभर, करिके शुचि सत्कर्म ।
नहिं भरि कल्पहु लोक दुहुं, करत विरोध अधर्म १॥

उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्तभरका जीना भी श्रेष्ठ है, दोनों लोकोंके विरोधी दुष्टकर्मसे कल्पभरका भी जीना उत्तम नहीं है ॥ १ ॥

गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा—गतवस्तु शोचै नहीं, गुनै न होनीहार ।
काज करहिं परवीन जन, आय परे अनुसार ॥ २ ॥

गतवस्तुका शोक और भावीकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, कुशल लोग वर्तमानकालके अनुरोधसे प्रवृत्त होते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डितः ॥३॥

दोहा—देव सत्पुरुष अरु पिता, करहिं सुभाव प्रसाद ।
स्नानपान लहि बन्धु सब, पंडित पाय सुवाद ॥ ३ ॥

निश्चय है कि देवता, सत्पुरुष और पिता ये प्रकृतिसे संतुष्ट होते हैं पर बन्धु स्नान और पानसे और पंडित प्रियवचनसे ॥३॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ ४ ॥

दोहा—आयुर्बल धन कर्म औ, विद्या मरण गनाय ।
पांचों रहते गर्भमें, जीवनके रचिजाय ॥ ४ ॥

आयुर्दाय, कर्म, विद्या, धन और मरण ये पांच जब जीव गर्भमें रहता है उसी समय सिरजे जाते हैं ॥ ४ ॥

अहो बत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥५॥

दोहा—अचरज चरित विचित्र अति, बडे जननके माहिं ।
जो तृणसम सम्पति मिले, तासु भार नैजाहिं ॥ ५ ॥

आश्चर्य है कि, महात्माओंके विचित्र चरित्र हैं, लक्ष्मीको तृण समान मानते हैं, यदि मिलती है तो उसके भारसे नम्र हो जाते हैं ॥५॥

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तत्त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥६॥

दोहा—जाहि प्रीति भय ताहिको, प्रीति दुःखको पात्र ।
प्रीति मूल दुख त्यागिके, बसै तवै सुखमात्र ॥ ६ ॥

जिसको किसीमें प्रीति रहती है उसीको भय होता है, स्नेहही

दुःखका भाजन है और सब दुःखका कारण स्नेह ही है इस कारण उसे छोडकर सुखी होना उचित है ॥ ६ ॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा–पहिलहिं करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सूझ ।
दुहुन बढत सुख वरत जो, होनी गुणत अबूझ ॥ ७ ॥

आनेवाले दुःखके पहिलेसे उपाय करनेवाला और जिसकी बुद्धिमें विपत्ति आजानेपर शीघ्र ही उपाय सूझ जाता है ये दोनों सुखसे बढते हैं और जो सोचता है कि, भाग्यवशसे जो होनेवाला है सो अवश्य होगा वह विनष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥ ८ ॥

दोहा–नृप धर्मी तो धर्म युत, पापी पाप अचार ।
जस राजा तैसी प्रजा, चलत राज अनुसार ॥ ८ ॥

यदि धर्मात्मा राजा होता है तो प्रजा भी धर्मिष्ठ होती है, यदि पापी हो तो पापी होती है, सब प्रजा राजाके अनुसार चलती है जैसा राजा वैसी प्रजा भी होती है ॥ ८ ॥

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् ।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥ ९ ॥

दोहा–जीवित हूं समझै मरेउ, मनुजहि धर्म विहीन ।
नहिं संशय चिरजीव सो, मरेहु धर्म नहिं हीन ॥ ९ ॥

धर्मरहित जीतेको मृतके समान समझता हूँ, निश्चय धर्मयुत मरा भी पुरुष चिरंजीवी ही है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१०॥

दोहा—धर्म अर्थ अरु काम अरु, मोक्ष न एकौ जासु ।
अजाकण्ठकुचके सरिस, व्यर्थ जन्म है तासु ॥ १० ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमेंसे जिसको एक भी नहीं रहता, उसका जन्म बकरीके गलस्तनके समान निरर्थक है ॥ १० ॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना ।
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥११॥

दोहा—और अगिन यश दुसहसों, जरिजारि दुर्जन नीच ।
आप न तैसो करिसकै, तब तिहि निन्दहिं बीच ॥११॥

दुर्जन दूसरेकी कीर्तिरूप दुःसह अग्निसे जलकर उसके पदको नहीं पाते इस लिये उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥ ११ ॥

बन्धाय विषयासङ्गो मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥१२॥

दोहा—विषयसंग परि बंध करु, विषयहीन निर्वान ।
बंधमोक्ष इन दुहुँनको, कारन मनय न आन ॥ १२ ॥

विषयमें आसक्त मन बंधका हेतु है, विषयसे रहित मुक्तिका, मनुष्योंके बंध और मोक्षका कारण मनही है ॥ १२ ॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मनः ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥ १३ ॥

दोहा—ब्रह्मज्ञानसों देहको, विगत भये अभिमान ।
जहां जहां मन जात है, तहां समाधि हि जान ॥१३॥

परमात्माके ज्ञानसे देहके अभिमानका नाश होजानेपर जहां जहां मन जाता है तहां तहां समाधिही है ॥ १३ ॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥१४॥

दोहा—इच्छित सब सुख केहि मिलै, जब सब दैवाधीन ।
याहिते सन्तोषहि शरण, चहिय चतुर कहँ कीन ॥१४॥

मनका अभिलषित सब सुख किसको मिलता है, जिस कारण सब दैवके वश हैं इससे सन्तोषपर भरोसा उचित है ॥ १४ ॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् ।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

दोहा—जैसे धेनु हजारमें, वत्स जाय लखि मात ।
तैसे ही कीन्हों करम, कर्ताके ढिग जात ॥ १५ ॥

जैसे सहस्र धेनुओंके रहते बछरा माताहीके निकट जाता है, वैसे ही जो कुछ कर्म किया जाता है सो कर्ताहीको मिलता है ॥१५॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनो दहति संसर्गाद्वनं सङ्गविवर्जनात् ॥ १६ ॥

दोहा—अनथिरकारजते न सुख, जन औ वन दुहुँमाहिं ।
जन तेहिं दाहै सङ्गते, वन विन संगहिं दाहिं ॥१६॥

जिसके कार्यकी स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें और न वनमें

सुख पाता है । जन उसको संसर्गसे जलाता और वन संगके त्यागसे जलाता है ॥ १६ ॥

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

दोहा-- जिमि खोदेहीते मिलै, भूतलके मधि वारि ।
तैसेहि सेवाके किये, गुरु विद्या मिल धारि ॥ १७ ॥

जैसे खननेके साधनसे खनके नर पातालके जलको पाता है वैसे ही गुरुगत विद्याको सेवक (शिष्य, शुश्रूषा करके) पाता है ॥१७॥

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥ १८ ॥

दोहा–फल सिधि कर्म अधीन है, बुद्धि कर्म अनुसारि ।
तोहू सुमति महान जन, कारज करहिं विचारि ॥१८॥

यद्यपि फल पुरुषके कर्मके अधीन रहता है और बुद्धि कर्मके अनुसार ही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचारके काम करतेहैं॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥ १९ ॥

दोहा–निज तिय धर्म भोजन तिहूँ, चहिये कीन्ह संतोष ।
पठन दान तपमें नहीं, तहँ संतोष है दोष ॥ १९ ॥

अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनोंमें सन्तोष करना उचित है। पढना, जप और दान इन तीनोंमें सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये १९

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते ।
शुनो योनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते २०

दोहा–एक अक्षर दातहु गुरुहिं, जो नर वन्दे नाहिं ।
जन्म सैकडा श्वान ह्वै, जनै चँडालन माहिं ॥ २० ॥

जो एक अक्षरकी शिक्षा देनेवाले गुरुकी वन्दना नहीं करता वह कुत्तेकी सौ योनिको भोगकर चांडालोंमें जन्मता है ॥ २० ॥

युगान्ते प्रचलेन्मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्था न चलन्ति कदाचन ॥ २१ ॥

दोहा–सातसिंधु कल्पांत चलु, मेरु चलै जुग अन्त ।
परे प्रयोजनते कबहुं, नाहिं चलते हैं सन्त ॥ २१ ॥

युगके अन्तमें सुमेरु चलायमान होता और कल्पके अन्तमें सातों सागर, परन्तु साधुलोग स्वीकृत अर्थसे कभी नहीं विचलते ॥२१॥

इति वृद्धचाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः १४.

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्या विधीयते ॥ १ ॥

म० छंद–अन्न वारि चारु बोल । तीनि रत्न भू अमोल ।
मूढलोगने पखान । टूक रत्नके बखान ॥ १ ॥

पृथ्वीमें जल, अन्न और प्रियवचन ये तीनही रत्न हैं, मूढोंने पाषाणके टुकडोंमें रत्नकी गिनती की है ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनं व्यसनानि च ॥ २ ॥

म० छं०—निर्धनत्व दुःख रोग। बन्ध औ विपत्ति शोक।
है स्वपापवृक्ष जात। ए फलै धरेके गात ॥ २ ॥

जीवोंको अपने अपराधस्वरूप वृक्षके दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

म० छं०—फेरि वित्त फेरि मित्त। फेरि ती धराहु सित्त।
फेरि फेरि सर्व येह। मानुषी मिलै न देह ॥ ३ ॥

धन, मित्र, स्त्री और पृथ्वी ये फिर फिर मिलते हैं, परन्तु यह मनुष्यशरीर फिर फिर नहीं मिलता ॥ ३ ॥

बहूनामप्यसत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः।
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥ ४ ॥

म० छं०—एक ह्वै अनेक लोग। वीर्य शत्रु जीति योग।
मेघ धार वारि देत। घास ढेर वारि देत ॥ ४ ॥

निश्चय है कि, बहुत जनोंका समुदाय शत्रुको जीत लेना है, तृणसमूह भी वृष्टिकी धाराके धरनेवाले मेघको निवारण करता है ॥ ४ ॥

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥ ५ ॥

म० छं०—थोर तेल बारि माहिं । गुप्तहू खलानि पाहिं ।
दान पात्र शास्त्र ज्ञानि । ये बढैं स्वभाव आनि ॥५॥

जलमें तेल, दुर्जनमें गुप्तवार्ता, सुपात्रमें दान और बुद्धिमानोंमें शास्त्र ये थोडे ही हों तो भी वस्तुकी शक्तिसे अपने आप विस्तारको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥ ६ ॥

म० छं०—धर्मवारता मशान । रोगमाहिं जौन ज्ञान ।
जो रहै वही सदोइ । बंधको न मुक्त होइ ॥ ६ ॥

धर्मविषयक कथामें, श्मशानपर और रोगियोंको जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह यदि सदा रहती तो कौन बन्धनसे मुक्त न होता ? ॥६॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न स्यान्महोदयः॥७॥

म० छं०—आदि चूकि अंत शोच । जो रहै विचारि दोष ।
पूर्वही बनै जो तैस । कौन को मिलै न ऐस ॥७॥

निंदित कर्म करनेके पश्चात् पछतानेवाले पुरुषको जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको वडी समृद्धि न होती॥७॥

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ।
विस्मयो न हि कर्त्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ॥ ८ ॥

म० छं०—दान नय विनै नगीच । शूरता विज्ञान बीच ।
कीजिये आचरज नाहिं । रत्नढेर भूमि माहिं ॥८॥

दानमें, तपमें, शूरतामें, विज्ञतामें, सुशीलतामें और नीतिमें विस्मय नहीं करना चाहिये इस कारण कि पृथ्वीमें बहुत रत्न हैं ॥ ८ ॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः॥९॥

म० छं०-दूरहू वसै नगीच। जासु जौन चित्तवीच।
जो न जासु चित्त पूर। है समीपहू सो दूर ॥ ९ ॥

जो जिसके हृदयमें रहता है वह दूर भी हो तो भी वह दूर नहीं, जो जिसके मनमें नहीं है वह समीप भी हो तो भी वह दूर है॥९॥

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम्।
व्याधो मृगवधं गन्तुं गीतं गायति सुस्वरम्॥१०॥

म०छं०-जाहिते चहै सुपास। मीठी बोलि तासु पास।
व्याध मारिबे मृगान। मंजु गावतो सुगान ॥ १० ॥

जिससे प्रियकी वांछा हो उससे सदा प्रिय बोलना उचित है, व्याध मृगके वधके निमित्त मधुरस्वरसे गीत गाता है ॥ १० ॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः।
सेव्यतां मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः॥११॥

म०छं०-अतिपास नाशहेत। दूरहू फलै न देत।
सेवनीय मध्यभाग। गुरू भूप नारि आग ॥ ११ ॥

अत्यन्त निकट रहनेपर विनाशके हेतु होते हैं, दूर रहनेसे फल नहीं देते, इस हेतु राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनको मध्यम अवस्थासे सेवना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पों राजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् १२

म०छं०–अग्नि सर्प मूर्ख नारि । राजवंश और वारि ।
यत्न साथ सेवनीय । सद्य ये हरैं छ जीव ॥ १२ ॥

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजाके कुल ये सदा सावधानतासे, सेवनके योग्य हैं, ये छः शीघ्र प्राणके हरनेवाले हैं ॥ १२ ॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥१३॥

म०छं०–जीवत गुणी जो होय । वा सुधर्मयुक्त जोय ।
धर्म और गुण न जासु । जीवन सुव्यर्थ तासु ॥१३॥

वही जीता है, जिसके गुण है और वही जीता है जिसके धर्म है, गुण और धर्मसे हीन पुरुषका जीना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरा पञ्चदशास्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥१४॥

म०छं०चाहते वशै जो कीन । एक कर्म लोग तीन ।
पन्द्रहोंके तौ मुखान । गान तौ बहोरु आन ॥ १४ ॥

जो एक ही कर्मसे जगतको वश किया चाहते हो तो पहिले पंद्रहोंके मुखसे मनको निवारण करो । तात्पर्य यह है कि, आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय हैं; मुख, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं, इन पन्द्रहोंसे मनरूप गौको निवारण करना उचित है । यहां गोशब्द गौ और मनरूप इंद्रियका वाचक है ॥ १४ ॥

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः १५

सो०-प्रिय स्वभाव अनुकूल, योग्य प्रसंगै वचन पुनि ।
निज बलके समतूल, कोप जानु पंडित सोई ॥१५॥

प्रसङ्गके योग्य वाक्य, प्रकृतिके सदृश प्रिय और अपनी शक्तिके अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान् है ॥ १५ ॥

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपः कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः॥

सो०-वस्तु एकही होय, तीनि तरह देखी गती ।
रति मृत मांस सोय, कामि योगि कुत्तेनसों ॥१६॥

एकही देहरूप वस्तु तीन प्रकारकी देख पडती है, योगी लोग उसको अतिनिंदित मृतकरूपसे, कामी पुरुष कांतारूपसे और कुत्ते मांसरूपसे देखते हैं ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १७ ॥

सो०-सिद्धौषध औ धर्म, मैथुन कुवचन भोजनौ ।
अपने घरका मर्म, चतुर नाहिं प्रगटित करै ॥ १७ ॥

सिद्ध औषध, धर्म, अपने घरका दोष, मैथुन, कुअन्नका भोजन और निंदित वचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमान्को उचित नहीं है॥

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते ॥ १८ ॥

सो०—तौलौं मौने ठानि, कोकिल हू दिन काटते ।
जौलौं आनन्दखानि, सबको वाणी होत है ॥ १८ ॥

तबलौं कोकिल मौनसाध दिन बिताता है, जबलौं सब जनोंको आनन्द देनेवाली वाणीसे सम्पन्न न होता है ॥ १८ ॥

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥ १९ ॥

सो०—धर्म धान्य धनवानि, गुरुवच औषध पांच यह ।
ग्रहण करन शुभ जानि, भले और विधि नहिं जिवै १९

धर्म, धन, धान्य, गुरुका वचन और औषध यदि हों तो इनको भली भांतिसे सुगृहीत करना चाहिये, जो ऐसा नहीं करता वह नहीं जीता है ॥ १९ ॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२०॥

सो०—तजौ दुष्ट सहवास, भजौ साधु संगम रुचिर ।
करौ पुण्य परकाश, हरि सुमिरौ जग नित्य नहिं॥२०

खलका संग छोड, साधुकी संगतिको स्वीकार कर, दिन रात पुण्य क्रिया करो और ईश्वरका नित्य स्मरण कर । इस कारण कि, संसार अनित्य है ॥ २० ॥

इति (वृद्धचाणक्ये) चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः १५.

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः॥ १॥

दोहा—जासु चित्त सब जन्तुपर, गलित दया रसमाह।
तासु ज्ञान मुक्ती जटा, भस्मलेप करु काह॥ १॥

जिसका चित्त सब प्राणियोंपर दयासे पिघल जाता है उसको ज्ञानसे, मोक्षसे, जटासे और विभूतिके लेपनेसे क्या?॥ १॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत्२

दोहा—एकौ अक्षर जो गुरु, शिष्यहि देत जनाय।
भूमि माहिं धन नाहिं वह, जो दै अनृण कहाय॥२॥

जो गुरु शिष्यको एक भी अक्षरका उपदेश करता है पृथ्वीमें ऐसा कोई द्रव्य नहीं है, जिसको देकर शिष्य उससे उऋण हो॥२॥

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानन्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम्॥ ३॥

दोहा—खल कांटा इन दुहुँनको, दोई जगत उपाय।
जूतनते मुख तोड़िबो, रहिबो दूर बचाय॥ ३॥

खल और कांटा इनका दोही प्रकारका उपाय है—जूतासे मुखका तोडना या दूरसे त्याग॥ ३॥

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥ ४ ॥

दोहा–वसन दशन राखै मलिन, बहु भोजन कटु बैन ।
सोवै रवि छिपवत उगत, तजु श्री जो हारि ऐन ॥४॥

मलिन वस्त्रवालेको, जो दांतोंके मलको दूर नहीं करता उसको, बहुत भोजन करनेवालेको, कटुभाषीको, सूर्यके उदय और अस्तके समयमें सोनेवालेको लक्ष्मी छोड देती है चाहे वह विष्णु हो ॥ ४ ॥

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं
दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते-
ऽतोऽर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥ ५ ॥

दोहा–तजहिं तीय अरु मीत औ, सेवक धन जब नाहिं ।
धन आये सेवैं बहुरि, धनै बन्धु जगमाहिं ॥ ५ ॥

मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु ये धनहीन पुरुषको छोड देते हैं पुरुष यदि धनी हो जाता है तो फिर उसीका आश्रय करते हैं अर्थ ही लोकमें बन्धु है ॥ ५ ॥

न्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ ६ ॥

दोहा–करि अनीति जोरेउ धन, दशौ वर्ष ठहराय ।
ग्यारहवें लगते सही, जरा मूलसों जाय ॥ ६ ॥

अनीतिसे अर्जित धन दश वर्ष पर्यन्त ठहरता है । ग्यारह वर्षके प्राप्त होनेपर मूलसहित नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शङ्करभूषणम् ॥ ७ ॥

दोहा–खोटो भल समरत्थपहँ, भलो खोट लहि नीच ।
विषौ भयो भूषण शिवहि, अमृत राहुकहँ मीच ॥ ७ ॥

अयोग्य भी वस्तु समर्थको योग्य होती है और योग्य भी दुर्जनको दूषण, अमृतने राहुको मृत्यु दिया, विष भी शंकरको भूषण हुआ॥७॥

तद्भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन् ।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं
दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥ ८ ॥

दोहा–द्विज उबरे भोजन सोई, परमहँ मैत्री सोय ।
जेहि न पाप वह चतुरता, धर्म दंभ विनु जोय ॥ ८ ॥

वही भोजन है जो ब्राह्मणके भोजनसे बचा है, वही मित्रता है जो दूसरेमें की जाती है, वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और विना दंभके जो किया जाता है वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिर्लुंठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥९॥

दोहा–मणि लौटत रहु पाँवतर, कांच रह्यो शिर जाय ।
लेत देत मणि मणि रहै, कांच कांच रहि जाय ॥ ९ ॥

मणि पांवके आगे लोटती हो और कांच शिरपर भी रक्खा हो परंतु क्रय विक्रयके समयमें काच काच ही रहता है और मणि मणि ही॥९॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ १० ॥

दोहा–बहुत विघ्न कम काल है, विद्या शास्त्र अपार ।
जलसे जैसे हंस पय, लीजै सार निकार ॥ १० ॥

शास्त्र अनन्त हैं और विद्या बहुत, काल थोडा है और विघ्न बहुत इस कारण जो सार वस्तु हो उसको ले लेना उचित है, जैसे हंस जलके मध्यसें दूधको ले लेता है ॥ १० ॥